REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 14 | ISSUE - 9 | JUNE - 2025

विकास, विस्थापन और पर्यावरणीय न्याय: समकालीन हिंदी साहित्य का पारिस्थितिक पुनर्पाठ

Dr. A. V. Nandaniya
Associate Professor, Shri V. M. Mehta Muni. Arts & Commerce College, Jamnagar.

प्रस्तावना

विकास आधुनिक समाज की सबसे प्रभावशाली अवधारणाओं में से एक है। औद्योगीकरण, शहरीकरण, बड़े बाँध, खनन, राजमार्ग, विद्युत परियोजनाएँ और तकनीकी विस्तार आधुनिक राष्ट्र-निर्माण तथा आर्थिक प्रगति के महत्वपूर्ण संकेतक माने गए हैं। किंतु विकास की इस प्रक्रिया का एक दूसरा पक्ष भी है— भूमि का अधिग्रहण, जंगलों की कटाई, नदियों का प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, पारंपरिक जीवन-व्यवस्थाओं का विघटन और बड़ी संख्या में लोगों का विस्थापन।

इसीलिए आज विकास को केवल आर्थिक वृद्धि के संदर्भ में देखना पर्याप्त नहीं है। विकास का प्रश्न इस बात से भी जुड़ता है कि **विकास का लाभ किसे मिलता है और उसकी कीमत कौन चुकाता है?**

समकालीन पर्यावरणीय विमर्श इसी प्रश्न को केंद्र में लाता है। पर्यावरणीय न्याय की अवधारणा यह पूछती है कि पर्यावरणीय संसाधनों और पर्यावरणीय संकटों का वितरण समाज में किस प्रकार होता है। Robert Bullard ने पर्यावरणीय न्याय के संदर्भ में यह रेखांकित किया कि पर्यावरणीय जोखिम और प्रदूषण का भार अक्सर सामाजिक रूप से कमजोर समुदायों पर असमान रूप से पड़ता है [1]।

हिंदी साहित्य में विकास, विस्थापन और पर्यावरण का प्रश्न पिछले कुछ दशकों में अधिक महत्वपूर्ण हुआ है। नदियों, जंगलों, पहाड़ों, गाँवों, आदिवासी समुदायों, किसानों और श्रमिकों के जीवन में आने वाले परिवर्तन साहित्य के विषय बने हैं।

इस संदर्भ में समकालीन हिंदी साहित्य का पारिस्थितिक पुनर्पाठ आवश्यक हो जाता है। साहित्य को केवल मनुष्य-केंद्रित अनुभव के रूप में पढ़ने के बजाय यदि उसे मनुष्य, प्रकृति और सत्ता के संबंधों के संदर्भ में पढ़ा जाए, तो विकास की छिपी हुई सामाजिक और पर्यावरणीय कीमत सामने आ सकती है।

पारिस्थितिक दृष्टि और साहित्य

साहित्य और प्रकृति का संबंध नया नहीं है। हिंदी साहित्य में प्रकृति का वर्णन प्राचीन काल से मिलता रहा है। ऋतु-वर्णन, नदी, पर्वत, वन, वर्षा, कृषि और ग्रामीण जीवन साहित्य के महत्वपूर्ण विषय रहे हैं।

लेकिन पारिस्थितिक आलोचना केवल प्रकृति के सौंदर्य का अध्ययन नहीं करती। यह यह प्रश्न उठाती है कि मनुष्य और प्रकृति के बीच संबंध किस प्रकार निर्मित होते हैं तथा साहित्य प्राकृतिक संसार को किस दृष्टि से प्रस्तुत करता है।

Cheryll Glotfelty ने ecocriticism को साहित्य और भौतिक पर्यावरण के संबंध के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया है [2]। इस दृष्टि से साहित्यिक पाठ को उसके पर्यावरणीय संदर्भ से अलग करके नहीं देखा जा सकता।

समकालीन हिंदी साहित्य के पारिस्थितिक पुनर्पाठ का अर्थ भी यही है कि हम साहित्यिक रचनाओं में उपस्थित जंगल, नदी, भूमि, पशु-पक्षी, मौसम और प्राकृतिक संसाधनों को केवल पृष्ठभूमि न मानें, बल्कि उन्हें कथा और सामाजिक जीवन के सक्रिय तत्व के रूप में समझें।

विकास की अवधारणा और उसका दूसरा पक्ष

आधुनिक विकास की अवधारणा प्रायः उत्पादन, औद्योगीकरण, आधारभूत संरचना और आर्थिक वृद्धि से जुड़ी रही है। लेकिन जब विकास के लिए किसी क्षेत्र की भूमि अधिग्रहित होती है, जंगल काटे जाते हैं या नदी की दिशा बदली जाती है, तो इसका प्रभाव केवल प्राकृतिक पर्यावरण पर नहीं पड़ता।

स्थानीय समुदायों की आजीविका, संस्कृति, सामाजिक संबंध और पारंपरिक ज्ञान भी प्रभावित होते हैं।

Arne Naess ने deep ecology के माध्यम से मनुष्य-केंद्रित दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए प्रकृति के अपने अंतर्निहित मूल्य पर बल दिया [3]। उनका विचार यह संकेत देता है कि प्रकृति को केवल मानव उपयोग के संसाधन के रूप में देखना पर्यावरणीय संकट की मूल मानसिकता से जुड़ा है।

यदि जंगल केवल लकड़ी है, नदी केवल जल-संसाधन है और भूमि केवल औद्योगिक परियोजना के लिए उपलब्ध संपत्ति है, तो विकास की प्रक्रिया में प्रकृति का वस्तुकरण होने लगता है।

समकालीन साहित्य इस वस्तुकरण पर प्रश्न उठाने की क्षमता रखता है।

विस्थापन: विकास की मानवीय कीमत

विकास परियोजनाओं से उत्पन्न विस्थापन आधुनिक भारत की महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं में से एक है। बड़े बाँध, खनन परियोजनाएँ, औद्योगिक क्षेत्र, वन परियोजनाएँ और शहरी विस्तार अनेक समुदायों को उनकी पारंपरिक भूमि से दूर कर सकते हैं।

विस्थापन केवल घर बदलने की घटना नहीं है। किसी व्यक्ति या समुदाय का अपनी भूमि से संबंध आर्थिक होने के साथ-साथ सांस्कृतिक और भावनात्मक भी होता है।

भूमि से जुड़े त्योहार, लोकगीत, धार्मिक परंपराएँ, सामुदायिक स्मृतियाँ और पूर्वजों की यादें भी विस्थापन के साथ प्रभावित हो सकती हैं।

Arundhati Roy ने बड़े बाँधों और विकास परियोजनाओं के संदर्भ में विस्थापन तथा विकास के लाभों के असमान वितरण पर गंभीर प्रश्न उठाए हैं [4]।

हिंदी साहित्य में भी विस्थापन केवल भौगोलिक परिवर्तन नहीं, बल्कि पहचान और स्मृति के संकट के रूप में सामने आता है।

आदिवासी जीवन और प्रकृति

पर्यावरणीय विमर्श में आदिवासी समाज का प्रश्न विशेष महत्व रखता है। आदिवासी समुदायों का जीवन जंगल, जमीन, नदी और प्राकृतिक संसाधनों से गहराई से जुड़ा रहा है।

आदिवासी जीवन के संदर्भ में जंगल केवल आर्थिक संसाधन नहीं होता। वह जीवन, संस्कृति, इतिहास और सामुदायिक पहचान का हिस्सा होता है।

इसलिए जब जंगल नष्ट होता है या समुदाय को वन क्षेत्र से हटाया जाता है, तो केवल प्राकृतिक संसाधन का नुकसान नहीं होता; एक संपूर्ण जीवन-पद्धति प्रभावित होती है।

महाश्वेता देवी के साहित्य में आदिवासी जीवन, शोषण, भूमि और सत्ता-संबंधों के प्रश्न अत्यंत प्रभावशाली ढंग से सामने आते हैं [5]। यद्यपि उनका अधिकांश लेखन बांग्ला में है, उनकी रचनाओं के हिंदी अनुवादों ने हिंदी पाठक को आदिवासी जीवन और संघर्ष के महत्वपूर्ण अनुभवों से परिचित कराया है।

यह साहित्य विकास के उस मॉडल पर प्रश्न उठाता है जिसमें प्रकृति और आदिवासी समुदाय दोनों को संसाधन के रूप में देखा जाने लगता है।

फणीश्वरनाथ रेणु और ग्रामीण पर्यावरण

हिंदी साहित्य में फणीश्वरनाथ रेणु का साहित्य ग्रामीण जीवन और स्थानीय पर्यावरण की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है।

मैला आँचल में गाँव केवल कथा की भौगोलिक पृष्ठभूमि नहीं है। वहाँ खेत, नदियाँ, ऋतुएँ, पशु, लोकजीवन, कृषि और ग्रामीण समुदाय कथा की संरचना का हिस्सा बनते हैं [6]।

रेणु का साहित्य हमें यह समझने में सहायता करता है कि पर्यावरण मनुष्य से अलग कोई बाहरी वस्तु नहीं है। ग्रामीण जीवन में मनुष्य और प्रकृति के बीच संबंध दैनिक जीवन का अभिन्न हिस्सा होता है।

इस दृष्टि से रेणु के साहित्य का पारिस्थितिक पुनर्पाठ ग्रामीण पर्यावरण स्थानीय संस्कृति और आधुनिक विकास के बीच तनाव को समझने की संभावनाएँ प्रस्तुत करता है।

निर्मल वर्मा और प्रकृति का अनुभव

निर्मल वर्मा के साहित्य में प्रकृति, स्मृति और मनुष्य के आंतरिक संसार का संबंध अनेक स्तरों पर दिखाई देता है।

उनके लेखन में प्रकृति केवल दृश्य-सौंदर्य नहीं है; वह मानवीय अनुभव और अस्तित्व-बोध से जुड़ी हुई है।

Ecocritical दृष्टि से ऐसे साहित्य का अध्ययन यह समझने में सहायता कर सकता है कि प्रकृति साहित्यिक पात्रों के मानसिक संसार को किस प्रकार प्रभावित करती है।

इस प्रकार पर्यावरणीय आलोचना केवल उन साहित्यिक रचनाओं तक सीमित नहीं है जिनका प्रत्यक्ष विषय प्रदूषण या जंगल है। साहित्य में प्रकृति की संवेदना, मनुष्य का

पर्यावरण से संबंध और प्राकृतिक संसार की उपस्थिति भी पारिस्थितिक अध्ययन का हिस्सा हो सकती है।

केदारनाथ सिंह और प्रकृति की संवेदना

केदारनाथ सिंह की कविता में पेड़, नदी, पक्षी, गाँव, मिट्टी और मनुष्य के बीच संबंध बार-बार सामने आते हैं।

उनकी कविता में प्रकृति कोई निष्क्रिय दृश्य नहीं है। वह मानवीय स्मृति और सांस्कृतिक अनुभव से जुड़ी हुई है।

कवि के लिए पेड़ केवल वनस्पति नहीं, बल्कि जीवन और स्मृति का प्रतीक बन सकता है। नदी केवल जलधारा नहीं, बल्कि सभ्यता और अनुभव की निरंतरता का प्रतीक बन सकती है।

इस प्रकार केदारनाथ सिंह के काव्य का पर्यावरणीय पुनर्पाठ मनुष्य और प्रकृति के भावात्मक संबंध को समझने में सहायक है।

पर्यावरणीय न्याय का प्रश्न

पर्यावरणीय संकट सभी लोगों को समान रूप से प्रभावित नहीं करता।

धनी वर्ग प्रदूषण से बचने के लिए सुरक्षित स्थानों पर जा सकता है, शुद्ध पानी खरीद सकता है और बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत गरीब समुदाय प्रदूषित जल, खराब हवा और प्राकृतिक संसाधनों की कमी का अधिक गंभीर प्रभाव झेल सकते हैं।

इसी असमानता को environmental justice के विमर्श में महत्वपूर्ण माना गया है।

Ramachandra Guha और Joan Martinez-Alier ने पर्यावरणीय संघर्षों को सामाजिक न्याय और संसाधनों के असमान वितरण से जोड़ते हुए "environmentalism of the poor" की अवधारणा पर चर्चा की है [7]।

भारतीय संदर्भ में यह दृष्टि विशेष रूप से उपयोगी है। जंगल, नदी और भूमि के संरक्षण के लिए संघर्ष करने वाले अनेक समुदाय वास्तव में अपनी आजीविका और अस्तित्व की रक्षा के लिए भी संघर्ष कर रहे होते हैं।

समकालीन हिंदी साहित्य इन संघर्षों को मानवीय अनुभव के रूप में अभिव्यक्त कर सकता है।

चिपको आंदोलन और साहित्यिक चेतना

भारत के पर्यावरणीय आंदोलनों में Chipko Movement का विशेष स्थान है। 1970 के दशक में हिमालयी क्षेत्रों में वृक्षों की कटाई के विरोध में स्थानीय समुदायों द्वारा चलाया गया यह आंदोलन पर्यावरण और सामुदायिक जीवन के संबंध का महत्वपूर्ण उदाहरण बन गया।

इस आंदोलन से जुड़ी गौरा देवी और अन्य ग्रामीण महिलाओं की भूमिका ने यह भी दिखाया कि पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं का अनुभव और नेतृत्व कितना महत्वपूर्ण हो सकता है।

Vandana Shiva ने भारतीय पर्यावरणीय आंदोलनों और महिलाओं की भूमिका पर विस्तार से विचार किया है [8]।

चिपको आंदोलन का साहित्यिक पुनर्पाठ यह समझने का अवसर देता है कि वृक्षों की रक्षा केवल "प्रकृति बचाने" का प्रश्न नहीं था। यह स्थानीय समुदायों की आजीविका, जल, जंगल और सामाजिक अस्तित्व से भी जुड़ा हुआ था।

स्त्री और पर्यावरण

पर्यावरणीय संकट का प्रभाव स्त्रियों पर भी विशिष्ट रूप से पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में जल, ईंधन और भोजन जैसी आवश्यकताओं की व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण से उनका श्रम और बढ़ सकता है।

इसी संदर्भ में ecofeminism का विकास हुआ।

Vandana Shiva ने *Staying Alive* में स्त्री, प्रकृति और विकास की आधुनिक संरचनाओं के बीच संबंधों पर विचार किया है [8]।

हालाँकि ecofeminism के विभिन्न रूपों के बीच महत्वपूर्ण वैचारिक अंतर हैं, फिर भी इसकी मूल चिंता यह है कि स्त्री और प्रकृति पर नियंत्रण की कुछ सामाजिक संरचनाएँ आपस में संबंधित हो सकती हैं।

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री और प्रकृति के संबंध का अध्ययन इस दृष्टि से नए अर्थ खोल सकता है।

नदी का साहित्यिक रूपक

भारतीय साहित्य और संस्कृति में नदी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। नदी जीवन, संस्कृति, कृषि, सभ्यता और आध्यात्मिकता से जुड़ी रही है।

लेकिन आधुनिक विकास के संदर्भ में नदी बाँध, जलविद्युत परियोजना, औद्योगिक प्रदूषण और शहरी कचरे जैसी समस्याओं से भी जुड़ गई है।

इसलिए समकालीन साहित्य में नदी का पुनर्पाठ विशेष अर्थ रखता है।

नदी अब केवल सौंदर्य या आध्यात्मिकता का प्रतीक नहीं है। वह पर्यावरणीय संकट और विकास की राजनीति का प्रतीक भी बन सकती है।

नदी की बदलती साहित्यिक छवि हमें यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों के साथ अपने संबंध को किस प्रकार बदला है।

जंगल और स्मृति

जंगल साहित्य में अक्सर रहस्य, स्वतंत्रता, जीवन और आदिमता का प्रतीक रहा है। लेकिन आदिवासी और पर्यावरणीय साहित्य में जंगल का अर्थ इससे कहीं अधिक व्यापक है।

जंगल आजीविका है, औषधि है, भोजन है, संस्कृति है और सामुदायिक स्मृति है।

जब जंगल नष्ट होता है तो केवल पेड़ नहीं कटते; उससे जुड़े जीवन के अनेक रूप भी समाप्त होने लगते हैं।

इसलिए समकालीन हिंदी साहित्य में जंगल का पुनर्पाठ विकास और पर्यावरणीय न्याय के प्रश्नों को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम हो सकता है।

भूमि और पहचान

भूमि का प्रश्न विस्थापन साहित्य का केंद्रीय प्रश्न है।

भूमि केवल संपत्ति नहीं होती। वह व्यक्ति और समुदाय की पहचान से जुड़ी होती है। किसान के लिए भूमि आजीविका का आधार है; आदिवासी समुदाय के लिए वह सांस्कृतिक और सामुदायिक अस्तित्व का हिस्सा हो सकती है।

विस्थापन के बाद व्यक्ति आर्थिक रूप से पुनर्वासित हो जाए, फिर भी उसके सांस्कृतिक और भावनात्मक विस्थापन की समस्या बनी रह सकती है।

समकालीन साहित्य इस "अदृश्य विस्थापन" को व्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

इसलिए विकास परियोजनाओं के मूल्यांकन में केवल आर्थिक मुआवजे को पर्याप्त मानना साहित्यिक दृष्टि से भी अधूरा होगा।

पारिस्थितिक पुनर्पाठ की आवश्यकता

साहित्य का पारिस्थितिक पुनर्पाठ हमें पुराने और नए साहित्य को नई दृष्टि से पढ़ने का अवसर देता है।

किसी कहानी में नदी क्यों उपस्थित है?

किसी उपन्यास में जंगल का क्या अर्थ है?

किसी कविता में पेड़ केवल प्रतीक है या जीवन का सक्रिय हिस्सा?

किसी ग्रामीण कथा में भूमि का संबंध केवल अर्थव्यवस्था से है या पहचान से भी?

ये प्रश्न साहित्य को नए अर्थों में पढ़ने की संभावना प्रदान करते हैं।

Lawrence Buell ने environmental imagination की अवधारणा के माध्यम से साहित्य में पर्यावरण की उपस्थिति और मानवीय कल्पना के संबंध को महत्वपूर्ण माना है [9]।

हिंदी साहित्य का पारिस्थितिक पुनर्पाठ इसी प्रकार साहित्यिक कल्पना और पर्यावरणीय वास्तविकता के संबंध को समझने का प्रयास हो सकता है।

विकास और प्रकृति का द्वंद्व

समकालीन साहित्य में विकास और प्रकृति के बीच संबंध को सरल "विकास बनाम पर्यावरण" के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है।

वास्तविक प्रश्न यह है कि किस प्रकार का विकास आवश्यक है और किसकी कीमत पर?

सड़कें, अस्पताल, बिजली, शिक्षा और संचार आधुनिक जीवन की आवश्यकताएँ हैं। लेकिन यदि इन सुविधाओं के निर्माण की प्रक्रिया में स्थानीय समुदायों के अधिकारों की अनदेखी हो, तो विकास सामाजिक न्याय के प्रश्न में बदल जाता है।

इसलिए साहित्य विकास-विरोधी नहीं, बल्कि **अन्यायपूर्ण विकास की आलोचना** कर सकता है।

साहित्य यह प्रश्न उठाता है कि क्या विकास का ऐसा मॉडल संभव है जिसमें आर्थिक प्रगति और पर्यावरणीय संरक्षण के साथ सामाजिक न्याय भी सुनिश्चित हो।

पर्यावरणीय संकट और आधुनिक मनुष्य

आधुनिक मनुष्य ने प्रकृति पर नियंत्रण स्थापित करने की अपनी क्षमता को विकास का संकेत माना। लेकिन जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता का ह्रास, जल संकट और प्रदूषण ने यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रकृति पर मनुष्य का नियंत्रण सीमित है।

पर्यावरणीय संकट मनुष्य को उसके अस्तित्व की पारिस्थितिक निर्भरता की याद दिलाता है।

Aldo Leopold ने land ethic की अवधारणा के माध्यम से मनुष्य की नैतिक जिम्मेदारी को भूमि और व्यापक ecological community तक विस्तारित करने की आवश्यकता पर बल दिया [10]।

हिंदी साहित्य में भी यह नैतिक प्रश्न महत्वपूर्ण है। यदि मनुष्य प्रकृति का हिस्सा है, तो प्रकृति के प्रति उसकी जिम्मेदारी केवल उपयोग की नहीं, बल्कि संरक्षण और सह-अस्तित्व की भी है।

जलवायु परिवर्तन और हिंदी साहित्य

आज पर्यावरणीय विमर्श का एक महत्वपूर्ण प्रश्न जलवायु परिवर्तन है।

अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़, अत्यधिक गर्मी, कृषि संकट और प्राकृतिक आपदाएँ मानव जीवन को प्रभावित कर रही हैं।

हिंदी साहित्य के सामने अब यह चुनौती है कि वह जलवायु परिवर्तन जैसी वैश्विक समस्या को स्थानीय अनुभवों के साथ कैसे जोड़ता है।

जलवायु परिवर्तन केवल वैज्ञानिक या राजनीतिक समस्या नहीं है। यह मनुष्य के घर, खेत, भोजन, रोजगार और सामाजिक संबंधों को प्रभावित करता है।

इसलिए भविष्य का हिंदी साहित्य climate narratives के माध्यम से पर्यावरणीय संकट के मानवीय अनुभव को अभिव्यक्त कर सकता है।

साहित्य और पर्यावरणीय चेतना

साहित्य का कार्य केवल समस्या का वर्णन करना नहीं है। वह पाठक की संवेदना को भी प्रभावित करता है।

किसी नदी के सूखने की वैज्ञानिक रिपोर्ट हमें आँकड़े देती है लेकिन साहित्य उस नदी के साथ जुड़े मनुष्य के अनुभव, स्मृति और पीड़ा को सामने ला सकता है।

इसी कारण साहित्य पर्यावरणीय चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

कहानी, कविता और उपन्यास प्रकृति को "दूर की समस्या" के बजाय व्यक्तिगत और भावनात्मक अनुभव में बदल सकते हैं।

यही साहित्य की पर्यावरणीय शक्ति है।

समकालीन हिंदी साहित्य की नई दिशाएँ

आज हिंदी साहित्य में पर्यावरणीय प्रश्न अनेक रूपों में दिखाई दे रहे हैं। जल संकट, किसान जीवन, जंगल, आदिवासी संघर्ष, खनन, शहरी प्रदूषण, नदी, जलवायु परिवर्तन और विस्थापन जैसे विषय साहित्य के लिए नई संभावनाएँ खोल रहे हैं।
साथ ही साहित्यिक आलोचना के लिए भी नई चुनौतियाँ सामने आ रही हैं।

अब यह आवश्यक है कि हिंदी आलोचना केवल मनुष्य-केंद्रित दृष्टि से साहित्य को न पढ़े। उसे साहित्य में उपस्थित non-human world को भी आलोचनात्मक विश्लेषण का हिस्सा बनाना चाहिए।

पारिस्थितिक आलोचना हिंदी साहित्य के अध्ययन में एक नई संवेदनात्मक और वैचारिक दिशा प्रदान कर सकती है।

निष्कर्ष

विकास, विस्थापन और पर्यावरणीय न्याय के प्रश्न समकालीन समाज की सबसे महत्वपूर्ण चुनौतियों में से हैं। इन प्रश्नों को केवल अर्थशास्त्र, राजनीति या पर्यावरण विज्ञान की दृष्टि से समझना पर्याप्त नहीं है। साहित्य इन समस्याओं के मानवीय और संवेदनात्मक पक्ष को सामने लाने का कार्य करता है।

Cheryll Glotfelty की ecocritical [2], Arne Naess की deep ecology [3], Ramachandra Guha और Joan Martinez-Alier का environmentalism of the poor [7], Vandana Shiva का ecofeminist चिंतन [8] तथा Lawrence Buell की environmental imagination [9] साहित्य और पर्यावरण के संबंध को समझने के महत्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान करते हैं।

हिंदी साहित्य में फणीश्वरनाथ रेणु, केदारनाथ सिंह तथा अन्य रचनाकारों के साहित्य का पारिस्थितिक पुनर्पाठ यह दिखा सकता है कि प्रकृति साहित्य में केवल सजावटी पृष्ठभूमि नहीं है। वह मनुष्य की स्मृति, पहचान, अर्थव्यवस्था और संस्कृति का सक्रिय हिस्सा है।

विस्थापन का प्रश्न हमें यह याद दिलाता है कि विकास की वास्तविक कीमत केवल आर्थिक आँकड़ों में नहीं मापी जा सकती। किसी समुदाय का अपनी भूमि, जंगल, नदी और सांस्कृतिक स्मृति से अलग होना ऐसी क्षति है जिसे केवल आर्थिक मुआवजे से पूरा नहीं किया जा सकता।

पर्यावरणीय न्याय का अर्थ इसलिए केवल स्वच्छ हवा और पानी का अधिकार नहीं है। यह **भूमि, जल, जंगल, आजीविका, सांस्कृतिक पहचान और निर्णय-प्रक्रिया में समान भागीदारी** के अधिकार से भी जुड़ा है।

समकालीन हिंदी साहित्य इस व्यापक प्रश्न को संवेदनात्मक भाषा प्रदान कर सकता है। वह विकास के चमकदार आख्यान के पीछे छिपे विस्थापन को आवाज दे सकता है, प्रकृति को केवल संसाधन मानने वाली दृष्टि पर प्रश्न उठा सकता है और मनुष्य तथा प्रकृति के बीच सह-अस्तित्व की नई कल्पना प्रस्तुत कर सकता है।

अंततः पारिस्थितिक पुनर्पाठ साहित्य को केवल "प्रकृति का साहित्य" बनाने का प्रयास नहीं है। यह साहित्य के माध्यम से **मनुष्य, प्रकृति, सत्ता और विकास के संबंधों को नए सिरे से समझने का प्रयास** है।

यदि हिंदी साहित्य इस दृष्टि को अधिक गंभीरता से अपनाता है, तो वह न केवल समकालीन पर्यावरणीय संकट को अभिव्यक्ति देगा, बल्कि एक अधिक न्यायपूर्ण और टिकाऊ भविष्य की कल्पना करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

संदर्भग्रंथ सूची

1. Bullard RD. Dumping in Dixie: race, class, and environmental quality. 3rd ed. Boulder: Westview Press; 2000.
2. Glotfelty C. Introduction: literary studies in an age of environmental crisis. In: Glotfelty C, Fromm H, editors. The ecocriticism reader: landmarks in literary ecology. Athens: University of Georgia Press; 1996. p. xv-xxxvii.
3. Naess A. Ecology, community and lifestyle: outline of an ecosophy. Rothenberg D, translator. Cambridge: Cambridge University Press; 1989.
4. Roy A. The greater common good. New Delhi: India Book Distributors; 1999.
5. Devi M. Imaginary maps. Spivak GC, translator. New York: Routledge; 1995.
6. रेणु फणीश्वरनाथ. मैला आँचल. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन; विभिन्न संस्करण.
7. Guha R, Martinez-Alier J. Varieties of environmentalism: essays north and south. London: Earthscan; 1997.
8. Shiva V. Staying alive: women, ecology and development. London: Zed Books; 1988.
9. Buell L. The environmental imagination: Thoreau, nature writing, and the formation of American culture. Cambridge: Harvard University Press; 1995.
10. Leopold A. A Sand County almanac and sketches here and there. New York: Oxford University Press; 1949.

Dr. A. V. Nandaniya
Associate Professor, Shri V. M. Mehta Muni. Arts & Commerce College, Jamnagar.